बिज़नेस स्टैंडर्ड
वर्ष 12 अंक 142

बीमा की कमियां

सरकार की बहुप्रचारित फसल बीमा योजना, प्रधानमंत्री फसल बीमा योजना (पीएमएफबीवाई) वर्ष 2016 में अपनी शुरुआत के बाद से ही अपेक्षाओं पर खरी नहीं उतर सकी है। एक तो इसमें कुछ अहम ढांचागत कमियां हैं और रही सही कसर क्रियान्वयन की चूक ने पूरी कर दी। हालांकि यह योजना सन 1970 के दशक से अब तक कृषि क्षेत्र का जोखिम कम करने के लिए अपनाई गई तमाम योजनाओं से बेहतर है। दावों के देरी से निपटान की शिकायतें बढ़ती जा रही हैं और सबसे अहम बात, नुकसान की भरपाई की राशि बेहद कम है। किसान संगठनों और यहां तक कि राजनीतिक दलों खासकर शिवसेना ने यह चेतावनी दी है कि प्रतिकूल मौसम, कीटों के हमले, बीमारियों और अन्य आपदाओं की स्थिति में यदि फसल खराब होती है और किसानों को अपर्याप्त मुआवजा मिलता है तो वह आंदोलन छेड़ेगी। मुरली मनोहर जोशी की अध्यक्षता वाली संसद की आकलन समिति ने दिसंबर 2018 में प्रस्तुत अपनी 30वीं रिपोर्ट में यह स्वीकार किया था कि पीएमएफबीवाई में कई दिक्कतें हैं जिनकी वजह से किसानों का भरोसा डगमगाया है। नुकसान के आकलन में देरी, दावों का भुगतान न होना या देर से होना तथा पारदर्शिता की कमी आदि कुछ ऐसी कमियां हैं जिनका जिक्र समिति ने किया।

योजना में किसानों की घटती रुचि का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि 2016-17 में जहां 5.72 करोड़ हेक्टेयर रकबे का बीमा हुआ था, वहीं 2017-18 में यह घटकर 4.75 करोड़ हेक्टेयर अथवा कुल रकबे का महज 24 फीसदी रह गया। अनुमान है कि 2018-19 में रकबे में और कमी आई है। हालांकि अभी अंतिम आंकड़े सामने नहीं आए हैं। गत वर्ष के खरीफ और रबी सत्र के दावों का भी पूरा भुगतान नहीं हुआ है। सरकार कुल रकबे का 50 फीसदी पीएमएफबीवाई के तहत लाना चाहती है। यह तब तक संभव नहीं है जब तक कि योजना में जरूरी सुधार न किए जाएं और इसे किसानों के लिए आकर्षक न बनाया जाए। चूंकि 85 फीसदी किसान छोटे और सीमांत हैं इसलिए उनमें नुकसान सहन करने की क्षमता नहीं होती। स्पष्ट है कि उन्हें जोखिम रहित योजना की आवश्यकता है।

इस नजरिये से देखा जाए तो पीएमएफबीवाई की तारीफ की जा सकती है कि यह तमाम प्रमुख फसलों को कवर करती है और किसानों को बहुत मामूली प्रीमियम चुकाना होता है। यह योजना बुआई न हो पाने से लेकर फसल कटने के बाद के नुकसान तक किसानों को बहुत व्यापक बचाव उपलब्ध कराती है। बहरहाल, राज्यों को व्यय में 50 फीसदी का साझेदार बनाना और कर्ज लेने वाले किसानों के मामलों में बैंक को शामिल करना कुछ प्रमुख गलतियां हैं। दावों के निपटान में देरी के लिए अक्सर राज्यों को जवाबदेह ठहराया जाता है और कहा जाता है कि वे बीमा कंपनियों को अपनी हिस्सेदारी में नाकाम रहे। इसके अलावा नुकसान आकलन के लिए आंकड़ों के संचार में देरी को भी वजह बताया जाता है। दूसरी ओर बैंकों को शामिल करने से किसानों और बीमा कंपनियों के बीच प्रत्यक्ष संपर्क रुक जाता है। किसान अक्सर नीतिगत दस्तावेजों या उनकी ओर से चुकाए गए प्रीमियम की रसीद को देख नहीं पाते हैं।

अब सरकार कर्जग्रस्त किसानों के लिए फसल बीमा को अनिवार्य के बजाय स्वैच्छिक बना रही है। ज्यादा प्रीमियम वाली फसलों को इसके दायरे से बाहर किया जा रहा है और राज्यों को किसानों के नुकसान की भरपाई के लिए अपने मॉडल तैयार करने की छूट दी जा रही है। यदि ऐसा होता है तो योजना की कई कमियां दूर हो जाएंगी। परंतु ड्रोन और सैटेलाइट इमेजरी जैसी तकनीक के इस्तेमाल से नुकसान के आकलन की गति तेज हो सकती है और दावों का जल्द तथा बेहतर निपटान सुनिश्चित होगा।

विनय सिन्हा

अफगान शांति प्रक्रिया में भारत की दुविधा

लंबे समय से हिंसा एवं अशांति का शिकार रहे अफगानिस्तान में शांति स्थापना प्रक्रिया में भारत को अधिक सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए। इसकी अहमियत बता रहे हैं **हर्ष वी पंत**

अफगानिस्तान में मेलमिलाप की चर्चाएं तेज होने के साथ हिंसा की घटनाओं में भी तेजी देखने को मिली है। इससे पता चलता है कि वहां कितना कुछ दांव पर लगा हुआ है? अफगानिस्तान के लिए नियुक्त अमेरिका के विशेष दूत जालमे खलीलजाद 18 वर्षों से चला आ रहा हिंसा का दौर खत्म करने के लिए उपद्रवियों के साथ 1 सितंबर तक एक समझौता कराने की कोशिश में लगे हुए हैं। दरअसल अमेरिकी जनता अफगानिस्तान में जल्द शांति स्थापना की पक्षधर है और डॉनल्ड ट्रंप के चुनाव अभियान में यह एक अहम वादा भी था।

अमेरिका और तालिबान के बीच पिछले साल अक्टूबर से अब तक सात दौर की सीधी बातचीत हो चुकी है। इस बातचीत का बुनियादी मकसद अफगानिस्तान से अमेरिकी सेना की सुरक्षित वापसी के साथ ही तालिबान से यह गारंटी भी लेनी है कि अफगान धरती का इस्तेमाल विदेशी आतंकी नहीं करेंगे ताकि बाकी दुनिया के लिए कोई खतरा न पैदा हो। दोहा में संपन्न आठवें दौर की बातचीत को सबसे उपयोगी माना गया और कई महीनों के गतिरोध के बाद इस वार्ता में एक नई ऊर्जा नजर आई। अमेरिका का इस पर जोर रहा है कि वह एक 'समग्र शांति समझौते के पक्ष में है, न कि एक वापसी समझौता' चाहता है। हालांकि उसके इस दावे को स्वीकार करने वाले लोग कम ही हैं।

इस महीने की शुरुआत में अमेरिका ने चीन, रूस और पाकिस्तान के साथ एक साझा बयान जारी किया था जिसमें तालिबान से संघर्ष-विराम पर सहमत होने और निर्वाचित अफगान सरकार के साथ बातचीत शुरू करने की अपील की गई थी ताकि लंबे युद्ध से बेहाल देश में शांति एवं स्थिरता का युग लौट सके। शांति स्थापना प्रक्रिया में 'तालिबान के मुख्य प्रायोजक' पाकिस्तान की भागीदारी का स्वागत होना अमेरिका के उस रवैये से नाटकीय भटकाव दिखाता है जिसमें पाकिस्तान को अलग-थलग रखा जाता था। इस बीच पाकिस्तान ट्रंप प्रशासन के साथ अपने ठंडे पड़े रिश्तों में थोड़ी गरमाहट लाने को बेकरार है। उसे उम्मीद है कि अफगानिस्तान में शांति समझौते के लिए तालिबान पर दबाव डालने में अमेरिका की मदद कर वह लगातार विरोधी होते जा रहे ट्रंप प्रशासन के सुर को थोड़ा नरम कर सकता है। अफगानिस्तान में नई शुरुआत को लेकर पाकिस्तान एक बार फिर केंद्रीय भूमिका में उभरा है। पाकिस्तान के प्रधानमंत्री इमरान खान को अमेरिकी यात्रा के लिए न्योता दिए जाने को इसी संदर्भ में देखा जाना चाहिए।

भारत इस घटनाक्रम पर पूरे चौकन्नेपन के साथ नजर रखता रहा है क्योंकि अभी तक अमेरिका ने भारत को इस प्रकरण से सीधे तौर पर नहीं जोड़ा है। भारत की तरफ से आपत्ति जताए जाने के बाद हाल ही में अमेरिकी अधिकारियों ने भारत को अफगानिस्तान संबंधी घटनाओं से अवगत कराना शुरू किया है। तालिबान के साथ कोई लेना-देना नहीं होने का भारत का रुख अब अस्वीकार्य हो चुका है। पिछले साल नवंबर में जाकर भारत ने अपने दो पूर्व राजनयिकों को मॉस्को दौर की वार्ता में शामिल होने के लिए 'गैर-आधिकारिक' तौर पर भेजा था। भारत ने तालिबान के साथ बातचीत के सफल होने के लिए जरूरी लगने वाली कुछ खास परिस्थितियों का हाल ही में जिक्र किया है।

अफगानिस्तान की मौजूदा सरकार में लगे अपने दांव के मद्देनजर भारत ने अफगानी समाज के सभी तबकों को समाहित करने के लिए सभी पहलुओं एवं प्रक्रियाओं का आह्वान किया है। भारत को डर है कि अशरफ गनी सरकार का कमजोर होना इस अशांत देश में लोकतांत्रिक तरीके से सामान्य स्थिति बहाल करने की दिशा में दो दशकों में किए गए तमाम अंतरराष्ट्रीय प्रयासों के खात्मे का इशारा होगा। यह पहल भारत को तालिबान के साथ औपचारिक संपर्क करने की सुविधा भी देती है।

भारत ने इस बात पर भी जोर दिया है कि शांति स्थापना की 'किसी भी प्रक्रिया को संवैधानिक विरासत एवं राजनीतिक जनादेश का सम्मान करना चाहिए'। यह इसलिए अहम है कि तालिबान व्यापक लोकतांत्रिक प्रक्रिया एवं महिला अधिकार जैसे प्रमुख पहलुओं को लेकर प्रतिबद्धता जताने से हिचक रहा है। इसके बजाय वह अब भी शरीया कानून की अपनी व्याख्या पर ही टिके रहना चाहता है। आखिर में, भारत के लिए यह खासा अहम है कि अफगानिस्तान में कोई भी प्रक्रिया ऐसी न हो जो आतंकवादियों एवं उसके हमराहियों के लिए शरणगाह बनने लायक जगह की गुंजाइश छोड़े। पिछली बार अफगानिस्तान से जाते समय अमेरिका ने पाकिस्तान को खुली छूट दे दी थी। इसके चलते कश्मीर में आतंकवाद एवं कट्टरपंथ का उभार होने से भारत के सुरक्षा हितों को गहरा आघात लगा।

हालांकि यह पूरी तरह साफ नहीं है कि भारत अपने कितने उद्देश्यों को हासिल कर पाएगा क्योंकि अमेरिका अफगानिस्तान से निकलने की जल्दबाजी में है। भारत का अफगानिस्तान में किया गया आर्थिक एवं सांस्कृतिक निवेश नगण्य हो जाएगा, अगर वह तत्काल अपनी राह दुरुस्त नहीं करता है। गत दिनों मोदी सरकार ने अफगानिस्तान के लिए 5.8 करोड़ डॉलर की मदद राशि देने के साथ ही ईरान के चाबहार बंदरगाह के लिए अपना आवंटन भी 1.5 अरब डॉलर से घटाकर 65 लाख डॉलर कर दिया। यह अफगानिस्तान में बदलती जमीनी हकीकत की स्वीकारोक्ति है क्योंकि भारत को वहां अपनी भूमिका अनिश्चित नजर आ रही है।

भारत में कई लोग इस स्थिति का ठीकरा ट्रंप प्रशासन पर फोड़ने लगेंगे। लेकिन भारत को इस रूपक से बचना चाहिए। अफगानिस्तान में अमेरिका के अपने हित हैं और वह उन्हें सुरक्षित रखने की कोशिश कर रहा है। असल में, ऐसी संभावना है कि इस प्रक्रिया में वह कुछ भारतीय हितों को भी सुरक्षित बनाए रखेगा क्योंकि हिंद-प्रशांत क्षेत्र में अनुकूल शक्ति संतुलन बनाए रखने के लिए अमेरिका को भारत की जरूरत है। लेकिन अफगानिस्तान के प्रति भारत का रवैया शुरू से ही दूसरों पर उपकार करने वाला रहा है। भारत लगातार इस बात पर जोर देता रहा कि वह अफगानिस्तान में केवल अपनी नरम ताकत ही लगाना चाहता है लेकिन सच यह है कि अमेरिकी सुरक्षा आवरण में रहने से ही यह सफल हो पाया। भारत ने अफगानिस्तान में कुछ शानदार काम किए हैं। वह बड़े दानदाता देशों में है, सांस्कृतिक प्रभाव का अहम जरिया है, उभरते लोकतांत्रिक शासन के विभिन्न क्षेत्रों में क्षमता विकसित करने और सुरक्षाबलों के प्रशिक्षण में सक्रिय रहा है। लेकिन जब मामला मुश्किल हालात का आता है तो उसे अपने नागरिकों पर हमले की स्थिति में भी सशक्त दिखने के लिए दूसरों पर निर्भर होना पड़ा।

एक अग्रणी वैश्विक शक्ति के तौर पर पहचान बनाने की मंशा रखने वाले एक राष्ट्र के लिए ऐसी स्थिति में होना बहुत सुविधाजनक नहीं है। विदेश नीति में जोखिम से बहुत परहेज रखने की अपनी कीमत भी होती है। काफी कुछ दांव पर है और भारत को शांति प्रक्रिया में अधिक सक्रियता दिखानी चाहिए और अपनी ही खींची सीमारेखा से संकोच नहीं करना चाहिए। आखिरकार, अपने हितों को नजरअंदाज किए जाने पर भारत विध्वंसक की भूमिका भी निभा सकता है। यह भारतीय हितों के साथ ही आम अफगानियों की आशाओं एवं आकांक्षाओं को चकनाचूर होने से बचाने के लिए भी जरूरी है। भारत सरकार को यह साफ करना चाहिए कि अच्छे लोगों का हमेशा आखिर में ही रहना जरूरी नहीं है।

(लेखक लंदन स्थित किंग्स कॉलेज में प्राध्यापक हैं)

उपभोक्ताओं से भावनात्मक संबंध कंपनियों की बुनियादी जरूरत

इंसानी पहलू

श्यामल मजूमदार

विपणन यानी मार्केटिंग में संबंधों के इस्तेमाल में कुछ भी नया नहीं है। सन 1983 में लियोनार्ड बेरी द्वारा दिये गए इस जुमले का अर्थ यह है कि कारोबारों को अपने मौजूदा ग्राहकों की सेवा करने पर अधिक ध्यान देना चाहिए। बेरी की मूल चिंता यह थी कि कंपनियां अगर यह सोचती हैं कि मार्केटिंग का संबंध नए ग्राहक बनाने से है तो वे गलत हैं। इसका संबंध ग्राहकों को अपने साथ जोड़े रखने से भी है। दुनिया भर की तमाम कंपनियां शुरुआत से ही ग्राहकों के साथ रिश्ता बरकरार रखती आई हैं और उन्हें सफलता भी मिली है। परंतु मार्केटिंग गुरु जगदीश सेठ का कहना है कि इस अवधारणा में बदलाव लाने की आवश्यकता है।

सेठ का उपभोक्ता व्यवहार, संबंध आधारित विपणन, प्रतिस्पर्धी, नीति और भूराजनैतिक विश्लेषण में अच्छा अध्ययन है। भारत के अल्पकालिक दौरे पर आए प्रोफेसर सेठ कहते हैं कि कई कंपनियां मार्केटिंग के जुनून में संबंधों को भुला चुकी हैं। उन्होंने कहा कि कंपनियों को उपभोक्ताओं की जेब के बजाय उनके दिल पर कब्जा करने की दिशा में आगे बढ़ना होगा।

उन्होंने कहा कि प्रोग्राम, समेकित पेशकश और व्यक्तिगत सेवाओं का स्तर इतना व्यापक हो चुका है कि इनमें भेद नहीं किया जा सकता। सेठ कहते हैं कि ग्राहक के साथ जुड़ाव की बात करें तो दिल का रिश्ता आर्थिक पेशकश पर हमेशा भारी पड़ता है। वह कहते हैं कि यह रिश्ता कारोबारी रिश्ते से आगे बढ़कर मित्रता में तब्दील होना चाहिए।

वह उदाहरण देकर बताते हैं कि कैसे कारोबारी जगत के प्रसिद्ध नाम भी डिजिटलीकरण के दौर में ग्राहकों के साथ रिश्ता कायम करने का बुनियादी नियम भुला बैठे हैं। सेठ कम से कम तीन शीर्ष विमानन कंपनियों का जिक्र करते हैं जिन्होंने उन्हें फोन करके यह तक पूछना जरूरी नहीं समझा कि उन्होंने निरंतर यात्रा के दौरान जो बोनस प्वाइंट अर्जित किए थे, उनका इस्तेमाल करना उन्होंने क्यों बंद कर दिया। अगर उनमें से किसी एक ने एक बार भी फोन किया होता तो शायद उन्हें लगता कि वे बतौर मूल्यवान ग्राहक उनकी कदर करते हैं। चूंकि उन कंपनियों ने परवाह नहीं की इसलिए सेठ ने भी दूसरी विमानन कंपनियों का रुख कर लिया। रिश्तों पर आधारित मार्केटिंग में केवल आंकड़ों से काम नहीं चलता क्योंकि आखिरकार आपको इंसानों और उनकी भावनाओं से काम पड़ता है।

> ग्राहक के साथ भावनात्मक रिश्ता कायम करने के लिए यह आवश्यक है कि कंपनी ईमानदार हो और संवाद में उसकी संवेदनशीलता उजागर हो जाने से भी उसे कोई घबराहट नहीं होती हो

संबंधों पर आधारित मार्केटिंग, लेनदेन की पारंपरिक मार्केटिंग के विपरीत होती है जो केवल बिक्री बढ़ाने पर जोर देती है। हालांकि इसकी अहमियत को भी कम करके नहीं आंका जा सकता है लेकिन समस्या यह है कि किसी ग्राहक को एक बार ब्रांड पसंद करने के लिए प्रेरित किया जा सकता है लेकिन बिना मजबूत संबंध आधारित मार्केटिंग नीति के वह दोबारा उस ब्रांड के पास लौटकर शायद ही आए।

ग्राहक के साथ भावनात्मक रिश्ता कायम करने के लिए यह आवश्यक है कि कंपनी ईमानदार हो और संवाद में उसकी संवेदनशीलता उजागर हो जाने से भी उसे कोई घबराहट नहीं होती हो। उदाहरण के लिए डोमिनोज ने बहुत प्रभावी तरीके से इसे अंजाम दिया। उसने ग्राहकों की नकारात्मक समीक्षा को लगातार सामने रखा, डोमिनोज के कर्मचारी इसे पढ़ते और एक बेहतर और सुधरे हुए पिज्जा का वादा करते। अपनी गलतियों को स्वीकार कर डोमिनोज ने अपने ब्रांड को पारदर्शी और ईमानदार साबित किया।

कुछ कंपनियां इसके लिए अनूठेपन या दुर्लभता का सिद्धांत अपनाते हैं। उदाहरण के लिए विमानन कंपनियां और उनके टिकट बेचने वाले एग्रीगेटर अक्सर यह दर्शाते हैं कि इस कीमत पर केवल तीन सीटें उपलब्ध हैं। यह सीधे-सीधे मांग और आपूर्ति के सिद्धांत की तरह काम करता है। अवसर जितना कम होगा, विषयवस्तु या उत्पाद, ग्राहक के लिए उतना ही महंगा होगा। कुछ अन्य ब्रांड आत्मगौरव का इस्तेमाल करते हैं जो मैस्लो के आवश्यकताओं के पदसोपान में सबसे ऊपर है। लोग चाहते हैं कि उन्हें तवज्जो दी जाए। यही कारण है कि कुछ विज्ञापन कहते हैं कि उनके उत्पाद सबके लिए नहीं हैं।

यह सही है कि हर गुजरता दिन ग्राहक के साथ भावनात्मक रिश्ते को कठिन बनाता जा रहा है क्योंकि तकनीक का प्रभाव बढ़ रहा है और कंपनियों को इस दिशा में अतिरिक्त प्रयास करने की जरूरत है। उदाहरण के लिए कंपनियां एक परिवार की आवश्यकता के अनुसार संबद्धता की नीति का इस्तेमाल कर सकती हैं। यह कम हो रहा है क्योंकि सेठ के मुताबिक अब परिजनों का स्थान रूममेट यानी साथ रहने वाले ले रहे हैं। पहले परिवार साथ में भोजन करते थे और मिलजुल कर काम करते थे। अब ऐसा नहीं है। लोगों में वैयक्तिकता बढ़ रही है। यानी एक परिवार के भीतर भी ब्रांड को लेकर लोगों की अलग-अलग पसंद है।

ऐसे में मार्केटिंग की संभावनाओं का काफी विस्तार हुआ है। परंतु अब चुनौती यह है कि परिवार के ऐसे हर सदस्य के साथ रिश्ता कायम करना होगा, जिसकी व्यक्तिगत ब्रांड प्राथमिकता है। मोबाइल फोन ने यह काम आसान किया है, कंपनियों को भी यह अंदाजा हुआ है कि उन्हें ग्राहक की जरूरत के मुताबिक चीजें तैयार करनी होंगी। यह काम केवल तकनीक से नहीं होगा बल्कि तकनीक का इस्तेमाल ग्राहकों के साथ भावनात्मक रिश्ता कायम करने में करना होगा ताकि वे बार-बार उनके पास लौट कर आयें।

कानाफूसी

संसद में कुर्सी की साझेदारी

कांग्रेस के राज्यसभा सदस्य राजीव गौड़ा सोमवार को संसद परिसर में स्थित सांसदों की कैंटीन में अपना दोपहर भोज करने के लिए कुर्सी की प्रतीक्षा करते देखे गए। उस समय भोजन कर रहे भाजपा सांसद अल्फांस कन्ननतनम ने गौड़ा से कहा कि अगर वे तीन तलाक विधेयक पर उनकी पार्टी का समर्थन करने को तैयार हो जाएं तो वह अपनी सीट उनके लिए खाली कर सकते हैं। वहीं एक अन्य स्थान पर एक केंद्रीय मंत्री ने पत्रकारों से अनौपचारिक चर्चा की। चूंकि कमरे में कुर्सियां कम पड़ गईं तो मंत्री ने अपने कार्यलयीन सहयोगियों से कहा कि वे पड़ोस में स्थित एक कांग्रेस नेता के कमरे से कुर्सियां मांग लें। उन्होंने आगे कहा कि कांग्रेस के सांसद मित्र को शायद इतनी कुर्सियों की आवश्यकता भी नहीं होगी क्योंकि उनके सांसदों की तादाद पहले की कम है।

हमें भी बचाओ

एक ओर जहां देश में बाघों की बढ़ती आबादी के लिए सरकार को तारीफ मिल रही है, वहीं एक जानवर ऐसा भी है जो सरकार से नाखुश है। वह जानवर है सांड यानी शेयर बाजार का प्रतीक चिह्न। शेयर बाजार में लगातार गिरावट के बीच कुछ कारोबारियों और निवेशकों ने ट्विटर पर सेव द बुल नामक हैशटैग चलाने की कोशिश की। एक शेयर बाजार कारोबारी ने अपने ट्वीट में लिखा कि भारत में 2,967 बाघ हैं। यह गिनती पिछली बार से 33 फीसदी अधिक है। परंतु अब हमारे देश में बुल यानी सांड बहुत कम रहे गए हैं। इनकी तादाद पिछली बार की तुलना में 2.05 करोड़ कम हो गई है। मानो इतना ही काफी नहीं था कि इस बीच डिस्कवरी टीवी ने मैन वर्सज वाइल्ड कार्यक्रम का एक प्रोमो जारी किया जिसमें प्रधानमंत्री नरेंद्र मोदी रोमांचक और साहसिक कारनामे करने वाले बेयर ग्रिल्स के साथ नजर आ रहे हैं। इस पर एक और दिलचस्प मीम देखने को मिला कि प्रधानमंत्री और बेयर मिलकर बाजार में बचे हुए बुल का शिकार करने का प्रयास कर रहे हैं।

आपका पक्ष

बीएसएनएल को सही कमान की जरूरत

नकदी की समस्या से जूझ रहा देश का दूरसंचार विभाग भारत संचार निगम लिमिटेड (बीएसएनएल) और महानगर टेलीफोन निगम लिमिडेट (एमटीएनएल) के विलय के बारे में सोच रहा है। बीएसएनएल को अपने कर्मचारियों को वेतन देने में परेशानी का सामना करना पड़ा था। रिपोर्ट के अनुसार बीएसएनएल के कर्मचारियों की संख्या 1,65,179 है तथा वर्ष 2018-19 में इसका घाटा 14,202 करोड़ रुपये पहुंच गया है। इस अवधि में कंपनी का राजस्व 19,308 करोड़ रुपये रहा। कंपनी की कुल आमदनी में से कर्मचारियों के वेतन भुगतान की लागत 75 प्रतिशत बैठती है। यह बात गौर करने वाली है कि अधिकतर सरकारी कंपनियां घाटे में ही चलती हैं। इसके घाटे में चलने का कारण आजतक पता नहीं चल पाया है। वहीं निजी दूरसंचार कंपनियों की बात की जाए तो एयरटेल के कर्मचारियों की संख्या करीब 20,000 है और कर्मचारियों की लागत कंपनी की आय का मात्र 2.95 प्रतिशत है। वहीं वोडाफोन के कर्मचारियों की संख्या महज 9,883 है तथा कर्मचारियों की लागत उसकी आय का 5.59 प्रतिशत बैठती है। बीएसएनएल का नेटवर्क पूरे देश में सुदूरवर्ती क्षेत्रों तक फैला हुआ है। लेकिन निजी कंपनियां भी नेटवर्क में बीएसएनएल से पीछे नहीं है। बीएसएनएल के घाटे में चलने की वजह सरकारी उदासीनता को ठहराया जा सकता है। बीएसएनएल को 4जी नेटवर्क नहीं देकर एक निजी कंपनी देना भी एक कारण हो सकता है। निजी कंपनियां बीएसएनएल से लीज लाइन लेकर अपनी कंपनियां चला रही हैं और खूब मुनाफा कमा रही हैं लेकिन बीएसएनएल आज डूबने के कगार पर पहुंच गया है। बीएसएनएल को घाटे से उबारने के लिए सरकार को इसे खुला नियंत्रण दे देना चाहिए। सरकारी हस्तक्षेप को भी इसके डूबने का बड़ा कारण माना जा सकता है।

रवि कुमार, नई दिल्ली

बीएसएनएल को घाटे से उबारने के लिए सरकार को ठोस कदम उठाने चाहिए

समाज में लिंगभेद आज भी कायम

हाल में मीडिया में उत्तराखंड में पिछले तीन महीनों में एक भी बच्ची के जन्म नहीं लेने की खबर सुर्खियों में आई थी। खबर के अनुसार उत्तरकाशी जिले में तीन महीने में केवल 133 लड़कों का जन्म हुआ। एक भी बच्ची के जन्म नहीं लेने की खबर से कई कयास भी लगाए गए हैं। इसमें कन्या भ्रूण हत्या के अंदेशे से इनकार नहीं किया जा सकता है। आज भी देश में बेटे की चाहत को अधिक तवज्जो दी जाती है। सरकार ने भ्रूण परीक्षण पर पूरी तरह से रोक लगाई है लेकिन भ्रूण परीक्षण करने का आरोप कई डॉक्टरों पर भी लगा है। सरकार बेटी बचाओ, बेटी पढ़ाओ का नारा देकर पूरे देश में बेटी बचाओ अभियान चली रही है। बहरहाल उत्तराखंड सरकार ने कहा है कि इस अवधि में 62 लड़कियां भी पैदा हुई हैं। देश में लिंग अनुपात में आज भी काफी अंतर है। पुरुषों के मुकाबले महिलाओं की संख्या कम है। इस अंतर को पाटने की जरूरत है। आज जमाना काफी बदल चुका है और लड़कियां लड़कों से कम नहीं रही है। हमें समाज में व्याप्त रूढ़िवादी सोच को बदलने की जरूरत है। इसके लिए नव युवकों तथा युवतियों को आगे आना होगा।

पाठक अपनी राय हमें इस पते पर भेज सकते हैं : संपादक, बिजनेस स्टैंडर्ड लिमिटेड, 4, बहादुर शाह जफर मार्ग, नई दिल्ली - 110002. आप हमें ईमेल भी कर सकते हैं : lettershindi@bsmail.in उस जगह का उल्लेख अवश्य करें, जहां से आप ईमेल कर रहे हैं।